भारतीय विचारधारा और जैन दृष्टि

श्री राधेश्यामधर द्विवेदी

विचार जीवन के घात-प्रतिघातों में बनाये जाते हैं और वे सही तभी माने जाते हैं जब उन विचारों से किसी विरोध की सम्भावना नहीं होती है। यद्यपि कालान्तर में वह सम्प्रदाय का स्वरूप लेकर एक पक्ष बन जाता है तब वह भी सम्यक् विचार है, इसमें सन्देह पैदा होता है। पर इस सबके बावजूद विचार की स्वतन्त्रता मनुष्य-मात्र का धर्म है और निष्पक्ष दृष्टि से यदि वह विचारता है तो किसी सर्व-सम्मत अवधारणा पर पहुँच सकता है और वह अवधारणा जैन-विचारों के करीब आती है। इस आधार पर ही जैन-विचारों का मूल्यांकन करना मेरा उद्देश्य है।

आज भगवान् बुद्ध या महावीर की भाँति घर से संन्यास लेकर सत्यान्वेषण के लिए हम जंगल में नहीं जाना चाहते हैं और यदि जाते भी हैं तो उस एकान्त अनुभव को सत्य मानने के लिए बाध्य नहीं हैं। आज अनुभवों तथा आचारों का विश्लेषण समाज के मध्य में रहकर करना होगा और उसी परख पर यदि पूर्व के चिन्तन सहायता करते हैं तो उनको माना जा सकता है वरना विवेचन मात्र वाचिक अन्ध-विश्वास कहलाएगा। इसी आधार पर लगता है कि प्राचीन भारतीय विचारों का संघर्ष जो छठीं शती ई. पू. में प्रारम्भ हुआ, उसमें जैन दर्शन ने परस्पर के अति संघर्षपूर्ण विचारों को शान्तपथ पर लाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। और इसी शान्तिमार्ग का पथिक होने के कारण वह अपने को समाज में बनाए तो रख सका, पर सम्पूर्ण समाज पर छा नहीं सका। प्रभाव के विस्तार से यदि व्यक्ति का या विचार का मूल्यांकन किया जाता है तब तो यह उतना प्रभावोत्पादक नहीं कहा जा सकता है, पर यदि सम्यक् दृष्टि के द्वारा आनुभविक सत्य के विश्लेषण का प्रश्न खड़ा किया जाता है तब तो यह निश्चय ही प्रभावोत्पादक कहा जा सकता है। यह दूसरी बात है कि मनुष्य सत्य समझ कर भी उसको करने में संकोच करता है क्योंकि समाज-व्यवस्था उसको स्वीकार नहीं करती और बेचारा मनुष्य सबको बदलने में पूर्ण समर्थ नहीं है इस सन्दर्भ में व्यक्ति के विचारों की भी सीमा खड़ी हुई है। वह समाज को सर्वथा लाँघकर कुछ भी नहीं कर सकता। अतएव व्यक्ति का दर्शन जब नये दर्शन के रूप में खड़ा होता है तो उसका व्यवहार, तत्त्व एवं ज्ञान का विवेचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामने रहता है। यदि उपर्युक्त तीन किसी नये सुव्यवस्थित जीवन-दर्शन को दे पाते हैं तब तो वे ठीक माने जाएँगे। यदि नहीं, तो मात्र खयाली पुलाव होंगे। जैन दर्शन की यह विशेषता है कि वह तत्त्व की दृष्टि से भूत की यथार्थ सत्ता, ज्ञान की दृष्टि से अनेकान्तता एवं आचार की दृष्टि से अहिंसक पद्धति पर विश्वास करता है। यह विवेचन जैसे कहने में सरल लगता है वैसे परिपालन में भी सरल है पर समाज की हठवादिता के कारण सर्वजन-मान्य होने में कठिन है। क्योंकि कोई भी समाज किसी दूसरे विचार को तब तक नहीं मानता जब तक उसके समाज की सारी व्यवस्थाओं का, दूसरा विचार सुधार के साथ स्थापन न करे। इसीलिए व्यक्ति जो जहाँ प्रतिष्ठित है अपने को सुव्यवस्थित देखकर ही अन्य स्थान पर बदलाव करता है वरना अस्तित्व के समाप्त होने के भय में अपने बिगड़े विचारों को ही सही मान कर चलता रहता है। इसीलिए विचारों, व्यवस्थाओं, स्थानों का संघर्ष पैदा होता है। पर इन संघर्षों को कम से कम संघर्ष का स्वरूप प्रदान करने में जैन-दर्शन का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

छठीं शती ई. पू. में जब आत्मा और अनात्मा का, नित्य और क्षणिकता का, वेद-विहित व्यवस्था तथा मनुष्य-निर्मित व्यवस्था का संघर्ष खड़ा हुआ था तब भगवान् महावीर के विचार कुछ अधिक कारगर बन पाये। यद्यपि ये विचार-परम्परा से महावीर को प्राप्त हुए थे पर उस समय के समाज में स्थित कलह को मिटाने में ये काफी सहायक बन सके, अतएव इनका मूल्य बढ़ गया।

तत्त्व-ज्ञान में अनेकान्त का तात्पर्य किसी वस्तु विषय के बारे में एक प्रकार के परामर्श के विषय में एक दृष्टि से सत्य होने तथा दूसरी दृष्टि से न होने की सम्भावना से है। यह प्रतिदिन के संघर्षों में बचाव की दृष्टि है। जो सत्य है, पर लोग अपनी विशेष दृष्टि के कारण इसका उपहास किया करते हैं जो यथार्थ चिन्तन में बाधक हो सकती है।

इसी प्रकार वस्तु के स्वरूप में कुछ बदलाव कुछ एकता दिखलाई देती है जो जैन दृष्टि से उत्पाद-व्यय-ध्रुवता की परिभाषा में बिलकुल सटीक बैठेगी, पर कोई विशेष दृष्टि के कारण यदि प्रत्येक वस्तु को क्षणमात्र स्थायी या कोई नित्य माने तो यह मात्र संघर्ष के और क्या पैदा कर सकती है।

विचार तथा तत्त्व-ज्ञान की परख व्यवहार से की जाती है। व्यवहार को अहिंसात्मक रुख तभी दिया जाता है जब व्यक्ति दूसरे के विचारों एवं तत्त्व-चिन्तन का समादर करता है। भगवान् महावीर का आधार अहिंसक स्वरूप का परिचायक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है क्योंकि वह दूसरे के प्रति वैचारिक हिंसा भी नहीं वर्दास्त कर सकते थे, इसीलिए उनका अहिंसक जीवन कठोर बन गया। चाहे इसे हम भले अव्यावहारिक कह लें, पर भगवान् महावीर के विचार की गम्भीरता को स्वीकार करने में कोई सन्देह नहीं माना जा सकता।

जब व्यक्ति विचारों को व्यवहार में उतारता है तब वह सही अर्थ में परीक्षित होता है। इसीलिए बाह्य को अध्यात्म का सहवर्ती माना गया है—

जे अज्झत्थं जाणइ ते बहिया जाणइ।
जे बहिया जाणइ से अज्झत्थं जाणइ॥

—समणसुत्तं, सम्यग्ज्ञानसूक्त १९, गाथा २५७।

अर्थात् जो अध्यात्म को जानता है वह बाह्य (भौतिक) को जानता है। जो बाह्य को जानता है वह अध्यात्म को जानता है। इस प्रकार बाह्य एवं अध्यात्म सहवर्ती हैं।

जैन साधु पाँच समितियों तथा तीन गुप्तियों का पालन करके अपने चरित्र को बनाते हैं तथा अशुभ प्रवृत्तियों को हटाते हैं। क्योंकि सम्यक् चरित्र के द्वारा जीव कर्मों से मुक्त होता है और कर्मों के कारण बन्धन में पड़ता है। कर्मों को नष्ट करने के लिए पञ्च महाव्रतों का पालन, सतर्कता का अवलम्बन तथा संयम का अभ्यास आवश्यक है। इसी क्रम में जीव तथा यथार्थ तत्त्व का अवबोध भी आवश्यक है। इन सबका प्रारम्भ जैन तत्त्व-दर्शन में अहिंसा के द्वारा होता है। अहिंसा का मन, वचन एवं कर्म तीनों के द्वारा पालन होना चाहिए। इसी प्रकार सत्य को आदर्श के साथ प्रियरूप भी माना गया है। सभी कामनाओं का परित्याग एवं विषयों के प्रति अनासक्त होना जैन धर्म-दर्शन की विशेषता है। इस प्रकार लगता है कि जैन दर्शन व्यवहार समन्वित होकर श्रेष्ठ जीवन के लिए अपने ऊपर भरोसा रखता है इसीलिए वह ईश्वर पर भी विश्वास नहीं करता और न अन्य मतावलम्बियों से घृणा करता है। कहा भी है—

कर्तास्ति कश्चिज्जगतः स चैकः स सर्वगः स स्ववशः स नित्यः।
इमा कुहेवाकविडम्बना स्युस्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम्॥

—स्याद्वादमंजरी, श्लोक ६।

जगत् का कोई कर्ता है, वह एक है, सर्वव्यापी है, स्वतन्त्र है, नित्य है आदि दुराग्रहपूर्ण सिद्धान्तों को स्वीकार करनेवालों के आप अनुशास्ता नहीं हो सकते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

—लोकतत्त्वनिर्णय १।३८ ।

मेरा भगवान् महावीर के वचनों के प्रति पक्षपात नहीं और न कपिल से द्वेष है, जो युक्तियुक्त वचन हैं उनका पालन होना चाहिए ।

इस प्रकार जैन विचारक आत्मतत्त्व की प्रतिष्ठा करके परपदार्थ के प्रति राग दृष्टि का प्रहाण करता है । तब वह विशुद्ध आत्मतत्त्व की ओर उन्मुख हो सहज एवं निर्विकार आत्मस्वरूप को प्राप्त करता है । यह ही सम्यक् दृष्टि है । महावीर ने स्वरूप की मर्यादा का बोध न होने से आत्म-तृष्णा की उत्पत्ति मानी है । पर यह बोध होते ही व्यक्ति समझने लगता है कि जो मैं अन्य वस्तुओं के प्रति अभितृष्ण था वह मेरे अज्ञान का फल था । मैं तो चिन्मात्र हूँ, यह जानते ही वह सकल आस्रवों से मुक्त हो जाता है । यह आत्मा तीन प्रकार का है बहिरात्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा । इस प्रकार बाह्याभिमुखी आसक्ति का त्याग कर, स्वपर विवेक को समझ, व्यक्ति समस्त कर्मफल कलंकों से रहित होकर परमात्मा के स्वरूप का अधिगम करता है । तब ही वह मुक्त हो पाता है । इस मुक्ति में बौद्धों की भाँति दीप का बुझ जाना या वैशेषिकों की भाँति विशेष गुणों का उच्छेद नहीं रहता, इसमें तो आत्मा चैतन्य स्वरूप होकर ज्ञानवान् रहता है क्योंकि ज्ञान आत्मा का निजत्व है—

आत्मलाभं विदुर्मोक्षं जीवनस्यान्तमलक्षयात् ।
नाभावो नाप्यचैतन्यं न चैतन्यमनर्थकम् ॥

—सिद्धिविनिश्चय १–३८४ ।

अतः वह सब अन्य कर्मबन्धनों से मुक्त होकर भी निज चैतन्यस्वरूप से उच्छिन्न नहीं होता, अतः आत्मा चैतन्य तथा ज्ञानवान् है, यह दृष्टि ही जैनों की सम्यक् दृष्टि है ।

इस सम्यक् ज्ञान की उत्पत्ति से व्यक्ति को जो स्वरूप बोध एवं स्वाधिकार का बोध होता है । उसके कारण उसका एक विशेष चरित्र विकसित होता है । वह दूसरे के अधिकारों को हड़पने के लिए व्याकुल नहीं होता, अतः व्यक्ति स्वातन्त्र्य के आधार पर स्वावलम्बी चर्या ही सम्यक् चारित्र है । अतः जैन विचारकों की जीवन-साधना अहिंसा के मौलिक समत्व पर प्रतिष्ठित होकर प्राणिमात्र के प्रति अभय एवं जीवित रहने की सतत् विचार साधना है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म के इस विचार का प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय जन-जीवन पर प्रभूत मात्रा में पाया जाता है। इसीलिए भारतीय शान्त प्रकृति के माने जाते हैं। इनमें भी जैन तो और भी शान्त कहलाते हैं। जैन प्रधान प्रदेश भी अन्य प्रदेशों की अपेक्षा शान्त दीखते हैं। इसका विश्लेषण करने पर लगता है कि इस शान्तिपन एवं दूसरे के विचारों के कद्र का कारण सम्भवतः जैन विचार ही हैं जिसके कारण दूसरे के विचारों को एक दृष्टि से सम्भव मानकर उपशान्त जीवन का मार्ग अपनाया जा सकता है और यह भारत में स्वभावतः विद्यमान है। इस स्वभाव के बनने में जैन विचारकों के विचार प्रमुख रूप से कारण माने जाते हैं। गांधी जी ने इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर देश की स्वाधीनता की अनूठी लड़ाई लड़ी। आज देश में जो धर्मनिरपेक्षता, स्वतन्त्रता एवं समानता का विचार पनप रहा है वह सम्भवतः प्राचीन दार्शनिक विचारों तथा आधुनिक परिस्थितियों के बीच जैन दर्शन के अनेकान्तवाद से निसृत सरणी के कारण ही है।

तुलनात्मक धर्म-दर्शन विभाग,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org